ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 271-273
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की राष्ट्रवादी दृष्टि एवं भाषिक चेतना

डॉ0 विवेकानन्द देव पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री सुदृष्टि बाबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय सुदिष्टपुरी रानीगंज, बलिया (उ0प्र0), भारत

Received- 04.03.2022, Revised- 07.03.2022, Accepted - 11.03.2022 E-mail: aaryvart2013@gmail.com

सारांशः – *भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र अपने समय के ऐसे साहित्यकार थे जिनकी समकालीन राजनीति पर बहुत पैनी दृष्टि थी। टैक्स, महामारी, धन के अनेकविध विदेशों में प्रवाहित होने, तथा शासन–सत्ता के अंधेपन से उपजी अँधेरगर्दी आदि को वे इस देश के अभिशाप के रूप में देखते थे। इसके विरोध का प्रमाण उनकी रचनाओं 'भारत दुर्दशा' तथा 'अँधेर नगरी' आदि में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है– 'अंधाधुंध मच्यौ सब देसा।मानहुँ राजा रहत विदेसा।।' उनकी राष्ट्र के प्रति बहुमुखी सोच उन्हें अपने समय का युगान्तरकारी रचनाकार सिद्ध करती है। वे एक पत्रकार, कवि, नाटककार, निबंधकार, समीक्षक, अनुवादक, जीवनीकार तथा आधुनिक हिन्दी भाषा की कई नवीन विधाओं के प्रवर्तक एवं उन्नायक के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। उनके कृतित्व का अधिकांश भाग राष्ट्रीय समस्याओं पर ही केन्द्रित है। शासन की समस्या, भाषा की प्रतिष्ठा, स्त्री शिक्षा अथवा सामाजिक सुधार का प्रश्न हो सब पर उनकी दृष्टि पड़ी है। इसीलिए साहित्य की नवीन विधाओं के प्रवर्तन के साथ भारतेंदु ने साहित्य सृजन हेतु नाटक विधा का विशेष रुप से चुनाव किया है और उसमें उन्हें अधिक सार्थकता तथा सफलता भी मिली है। पुनर्जागरण की व्यापक सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नाटक सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है। क्योंकि यह प्रस्तुतीकरण एवं आस्वादन दोनों ही दृष्टियों से अन्य कला माध्यमों की अपेक्षा अधिक समाजोन्मुखी है अर्थात् वैयक्तिक न होकर सामूहिक अथवा सामाजिक है।*

कुंजीभूत शब्द– साहित्यकार, टैक्स, महामारी, प्रवाहित, शासन–सत्ता, अंधेपन, अभिशाप, प्रमाण, दुर्दशा।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का राष्ट्रवाद सच्चे अर्थों में देश की सर्वांगीण उन्नति से संबंधित है। वे अपने राष्ट्र के नागरिकों को शिक्षा, उद्योग, व्यापार एवं प्रशासन के मामले में आत्मनिर्भर देखना चाहते थे। वे देश की बदहाली के मुख्य कारणों अशिक्षा, अकर्मण्यता, परमुखापेक्षिता, अंधविश्वास और निर्धनता को दूर भगा कर एक सर्वतोमुखी प्रगतिशील राष्ट्र की स्थापना का सुंदर स्वप्न देखते थे। नवंबर 1884 ई. में बलिया के ददरी मेले में 'आर्य देशोपकारिणी सभा' के मंच से दिए गए अपने अंतिम सार्वजनिक भाषण में भारतीयों की अकर्मण्यता और अनुद्यमशीलता पर चोट करते हुए वे कहते हैं कि– '' यहाँ के लोगों को जितना निकम्मापन हो उतना ही वह बड़ा अमीर समझा जाता है।''[1] ध्यातव्य है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति उस राष्ट्र के उन्नतिशील नागरिकों के उद्यम और दूरदर्शिता पर निर्भर करती है। आधुनिक विकसित राष्ट्रों के उदाहरण से वे इसकी शिक्षा ग्रहण करने की सलाह देते हैं– "इंग्लैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से अपना पेट भरा और दूसरे हाथ से उन्नति के काँटों को साफ किया, क्या इंग्लैंड में किसान, खेतवाले, गाड़ीवाले,गाड़ीवान, मजदूर, कोचवान, आदि नहीं है? किसी भी देश में सभी पेट भरे हुए नहीं होते। किंतु वे लोग जहाँ खेत जोतते – बोते हैं वहीं उसके साथ यह भी सोचते हैं कि ऐसी कौन सी नई कल या मसाला बनावें जिससे इस खेत में आगे से दूना अन्न उपजे।"[2] देश की निर्धनता, भुखमरी, गरीबी तथा पिछड़ेपन को देखकर उनका मन व्यथित हो जाता था। वह देख रहे थे कि देश की लक्ष्मी हजार–हजार राहों से होकर विदेशों में जा रही है। वे देश को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर देखना चाहते थे। अंग्रेजों की आधुनिक ज्ञान–विज्ञान संपन्न स्थिति के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था को खोखला बनाने वाली शोषक प्रवृत्ति और नीति की वे खुलकर आलोचना करते थे–

"अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी, पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।"[3]

हिंदी क्षेत्र में पुनर्जागरण की पहली सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्ति भारतेंदु हरिश्चंद्र के व्यक्तित्व में मिलती है। पुनर्जागरण आंदोलन की मूल भावना थी– हिंदू समाज की एकांतिक भावना का निरसन करके उसे एक समाज के रूप में संगठित करना। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, और स्वयं भारतेंदु द्वारा गठित तदीय समाज की स्थापना और नामकरण इसी भावना की पुष्टि करते हैं। किंतु भारतेंदु इससे आगे बढ़कर एक बहुमुखी, प्रगतिशील एवं स्वदेशोद्धारक समाज की निर्मिति चाहते थे। वे स्वदेशी वस्तु, विचारधारा एवं भावना का प्रचार–प्रसार राष्ट्रहित में परम आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि अपने देश की बनी हुई वस्तुओं के इस्तेमाल करने में आत्मगौरव का भाव जगता है जबकि पराये देश में उत्पन्न हुई वस्तु, कला आदि के प्रयोग में वह भाव नहीं जगता। 21 वीं सदी की 'मेक इन इंडिया' तथा 'मेड इन इंडिया' जैसी बातें उसी का मूर्त रूप लगती हैं। वे भारतवासियों को स्वदेशी वस्तुओं को हेय समझने के मूर्खतापूर्ण व्यवहार पर फटकार लगाते हैं–

"मूरख हिंदू कस न लहैं दुख, जिनका यह अति दीठा। घर की खाँड़ खुरखुरी लागे, बाहर का गुड़ मीठा।।"

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

भारतेंदु ने 'स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का प्रतिज्ञा–पत्र' 23 मार्च 1874 ई. की अपनी 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया था। जिसके बारे में डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रशंसा करते हुए लिखा था कि 'यह प्रतिज्ञा–पत्र भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।"[4] इस प्रकार बंगाल से प्रारंभ हुई राष्ट्रीय पुनर्जागरण चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति काशी के भारतेंदु के यहाँ और अधिक विकसित रूप में मिलती है । भारतेंदु बाबू संकीर्ण हिंदू पुनरुत्थान की सोच के हिमायती नहीं थे, अपितु वे हिंदू शब्द को व्यापक अर्थवत्ता प्रदान करने के पक्षधर थे। बलिया के ददरी मेले में दिए गए अपने प्रसिद्ध व्याख्यान जिसे बाद में 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' नाम से निबंध रूप में प्रकाशित किया गया, उसमें वे स्पष्ट संदेश देते हुए कहते हैं कि– "इस महामंत्र का जप करो, जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग ,किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू है। हिंदू की सहायता करो। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मी, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो।" इस प्रकार स्वदेशी की भावना और राष्ट्र की धर्मनिरपेक्ष परिकल्पना में भारतेंदु का दर्शन बंकिम चंद्र चटर्जी से भी अग्रगामी है। वे इस प्रसंग में आधुनिक संविधान की रूपरेखा पहले ही निर्मित करते हुए दिखाई पड़ते हैं। हिंदी प्रेमी शिक्षाविदों को भारतेंदु जैसे चिंतक– साहित्यकार अपने स्वदेशी चिंतन की समग्रता में महात्मा गांधी के सन्निकट खड़े दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की अभिनव राष्ट्रवादी दृष्टि में एक ऐसे प्रगतिशील एवं आत्मनिर्भर राष्ट्र की परिकल्पना निहित है, जिसमें बद्धमूल धारणाओं, जड़– विचारधाराओं जाति–भेदों, कुप्रथाओं, भाग्यवादी मानसिकताओं, अशिक्षा तथा धनहीनता आदि का कोई स्थान न रहे। राष्ट्र हर तरह की संकीर्णताओं को त्यागकर आधुनिक ज्ञान–विज्ञान,तकनीकी, कला–कौशल का विकासकर उन्नति के पथ पर निरंतर बढ़ते हुए विश्व पटल पर अपनी नयी पहचान के साथ स्थापित हो तथा वर्षों पुराने, खोए हुए आत्मगौरव को पुनर्प्राप्त कर ले। उनका नारा था– "स्वत्व निज भारत गहै।"

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की राष्ट्रभाषिक चेतना– भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की भाषिक चेतना युगांतरकारी होने के साथ ही राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत है। उन्होंने देश को एकता,अखंडता और आत्म गौरव के सूत्र में बाँधने के लिए 'निज भाषा' की उन्नति को परमावश्यक माना है। ब्रज भाषा के समर्थ कवि होने के बावजूद निज भाषा से उनका अभिप्राय आधुनिक हिन्दी खड़ी बोली से है। जो युगानुरूप होने के साथ ही मानक भाषा और परिनिष्ठित भाषा के रूप में संपूर्ण भारत में सर्वस्वीकृत हो चली थी। उनके मत में राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के लिए अपनी भाषा की उन्नति सबसे पहली शर्त है–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।"[5]

भारतेन्दु जी इस 'निज भाषा' की उन्नति के द्वारा राष्ट्र के सर्वांगीण उत्थान का सुनहला स्वप्न देखते हैं। किसी राष्ट्र की भाषा चेतना का उसकी राष्ट्रीय अस्मिता के साथ अटूट संबंध जुड़ा होता है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत का आत्मीयतापूर्ण सुंदर आख्यान अपनी राष्ट्रभाषा में ही संभव है। किसी विदेशी भाषा के द्वारा उसका भावनात्मक आख्यान सशक्त रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता। अतः सर्वप्रथम अपनी भाषा की उन्नति हेतु प्रयास करना चाहिए–

"करहुँ विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जो सब को मूल।।"

उनका स्पष्ट अभिमत था कि विदेशी भाषा के माध्यम से यदि हम संपूर्ण ज्ञान–विज्ञान में दक्षता प्राप्त भी कर लें तब भी अपनी भाषा की अनभिज्ञता हमें हीनता की ओर ही ले जाएगी। आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मानपूर्वक जीवन यापन एवं अपनी बात के सम्यक् रूपेण संप्रेषण हेतु हमें अपनी भाषा के विस्तृत ज्ञान के साथ–साथ उसके प्रति रुचि व सम्मान का भाव भी रखना ही होगा। खेद की बात है कि आज हमारे देश में ऐसे बहुसंख्यक लोग हैं जो विदेशी भाषा अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोल या लिख सकते हैं परन्तु अपनी राष्ट्रभाषा में दो–चार वाक्य भी शुद्ध–शुद्ध लिख या पढ़ नहीं सकते।उन्हीं को लक्ष्य करके भारतेन्दु बाबू कहते हैंदृ

"अंगरेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन। पै निज भाषा ज्ञान बिनु, रहत हीन के हीन।।"

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के लिए भाषा की हानि राष्ट्रीय अस्मिता एवं सांस्कृतिक अस्मिता की हानि के समतुल्य थी। उनकी इस बात में सहमति थी की वैश्विक मंच पर अपनी भाषिक पहचान न रखने वाला राष्ट्र गूँगे राष्ट्र के समान समादृत नहीं होता है। वे राष्ट्रभाषा को मौलिक विचार–चिंतन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा मानते थे। अंग्रेजी भाषा के प्रति अंग्रेजों के अगाध प्रेम को एक उदाहरण के तौर पर दिखाकर उसके माध्यम से भारतीयों को अपनी भाषा के प्रति गहरा लगाव व सम्मान रखने का संदेश देते हुए वे कहते हैं कि अंग्रेजों को संपूर्ण विश्व पर शासन में सहयोग करने में उनकी भाषा के प्रति निष्ठा की भी महत्वपूर्ण भूमिका है–

"पै निज भाषा जानि तेहिं, तजत नहीं अंगरेज। दिन दिन याही को करत, उन्नति वै अति तेज।।"

उनका सुझाव था कि ज्ञान के विविध अनुशासनों पर अधिकार करने, विज्ञान में वृद्धि करने तथा अपनी भाषा को समृद्ध करने हेतु हमें विश्व की सभी समृद्ध भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए।

"अंगरेजी अरु फारसी, अरबी संस्कृत ढेर। खुले खजाने तिनहिं क्यौं, लूटत लावहु देर।।"

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

वे हिंदी को संपूर्ण विश्व में अंतर्राष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। वे जानते थे कि राष्ट्रभाषा का संपूर्ण विश्व में प्रचार–प्रसार करने से ही उसको व्यापकता प्राप्त होगी। इसलिए राष्ट्रीय प्रगति की आधारशिला अपनी भाषा को येन– केन प्रकारेण विकसित एवं प्रचारित–प्रसारित करने हेतु वे भारतीयों से आह्वान करते हैं–

"प्रचलित करहुँ जहान में, निज भाषा करि जत्न। राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न।।"

वे हिंदी भाषा को निर्विवाद रूप से राष्ट्रभाषा का दर्जा देने के पक्षपाती थे। उनका यह स्वप्न एक न एक दिन अवश्य साकार होगा।

संदर्भ

1. भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकता है (निबंध) – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, इण्छर मीडिएट, गद्यगरिमा उ0प्र0 बोर्ड– पृष्ठ संख्या–31.
2. वही, पृष्ठ सं0 – 30–31.
3. भारत दुर्दशा (नाटक) – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अंक–प्रथम।
4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0सं0–84.
5. मातृभाषा प्रेम पर दोहे – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, दोहा सं.–1.

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास– राम स्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018 ई0।
2. प्रज्ञा पत्रिका, भारतेन्दु स्मृति अंक–31,32काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वर्ष 1986.
3. भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है(निबन्ध)– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, इण्टरमीडिएट गद्य गरिमा उ.प्र.बोर्ड राजीव प्रकाशन, वर्ष 2012–13.
4. मातृभाषा के प्रति , भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, कविताकोश इण्टरनेट से साभार।
5. भारत दुर्दशा (नाटक)– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

*****